आधार कार्ड का डगमगाता स्वरूप

आधार कार्ड की शुरुआत नागरिक पहचान पत्र के रूप में सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं एलपीजी गैस कनेक्शन पाने से हुई थी। लेकिन अब जिस प्रकार विभिन्न आदेशों के द्वारा सरकार हर क्षेत्र में इसकी अनिवार्यता को लादने की कोशिश कर रही है, उससे इसका स्वरूप ही बदल गया है। इसको गैर कानूनी या न्यायालय की अवज्ञा जैसे उपनामों से मंड़ित किया जाने लगा है। हाल के कुछ दिनों में सरकार ने अपने अनेक डाटाबेस में इसकी अनिवार्यता को लागू करने हेतू आदेश जारी किए हैं। इसके अभाव में विकलांगों को सुविधाओं से वंचित करना, बच्चों को मध्यकालीन भोजन न मिलना, भोपाल गैस पीड़ितों के नाम मुआवजा सूची से हटाने की धमकी मिलना आदि ऐसे कई आदेश हैं, जिन्होंने आधार कार्ड को सरकारी दादागिरी का दूसरा नाम दे दिया है।

इन सब आदेशों के पीछे केवल सरकार का अविवेक ही नहीं झलकता, बल्कि यह उच्चतम न्यायालय के आदेश की भी अवज्ञा बताता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने अक्टूबर 2015 में इस बात पर ध्यान दिया था और आधार कार्ड की अनिवार्यता से संबंधित छः आदेश निकाले थे। इसके बावजूद 2016 में सरकार ने देश के नागरिकों को निजता के आधार से वंचित करते हुए आधार अधिनियम को धन-विधेयक के रूप में पारित करवा लिया। इस धन-विधेयक का कवच धारण करके सरकार ने एक बार फिर आयकर जमा करने के लिए आधार नंबर का होना अनिवार्य कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि लोगों को आधार नंबर उपलब्ध न करा पाने की स्थिति में उनके पैन नंबर रद्ध करने की भी धमकी दी जाने लगी।

इस योजना के प्रारंभ से ही जो आशंकाएँ अपेक्षित थीं, वे अब और अधिक बिगड़े रूप में सामने आ रही हैं। इस कार्य में एल वन एक्स आइडेंटीटी सॉल्यूशन्स, सर्फान आदि विदेशी कंपनियों का अस्तित्व ही अपने आप में बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इन कंपनियों के अपने देश के सूचना केंद्रों एवं रक्षा संस्थानों से निकट संबंध हैं। इस योजना में बायोमैट्रिक्स के प्रयोग का औचित्य भी समझ से नहीं आता, जबकि यह हर जगह विफल रहा है। इस योजना को एलपीजी से जोड़कर बचत का ढोल पीटने वाली बात भी कैग (CAG) के अनुसार निरर्थक सिद्ध हुई है।

ऊपर से 2013 से 2015 तक इस योजना पर उठे विवादों के बारे में न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय भी भ्रामक लगते हैं। ऐसा लगता है कि न्यायाधीशों ने पूरे मामले पर गौर करने की तकलीफ ही नहीं उठाई और यूं ही एक वक्तव्य दे दिया कि आधार को किसी भी कल्याणकारी योजना के लिए अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता। यही कारण है कि 6 फरवरी 2017 को मुख्य न्यायाधीश के न्यायालय ने अटार्नी जनरल के इस वक्तव्य को तुरंत स्वीकृत कर लिया कि आधार की अनिवार्यता के बहाने सरकार सभी मोबाइल नंबरों की वैधता को जांचना चाहती है। जबकि अक्टूबर 2015 में इसी प्रकार की एक याचिका को संविधान पीठ ने अस्वीकृत कर दिया था। यह जानकर और सोचकर हैरानी होती है कि लोगों की संवैधानिक स्वतंत्रता और अधिकार से जुड़े इतने महत्वपूर्ण मुद्दे को न्यायालय इतने हल्के में कैसे ले सकता है ?सन् 2011 में ही संसदीय स्थायी समिति और समय-समय पर उच्चतम न्यायालय, दोनों ही इस योजना और उसके कार्यान्वयन को लेकर अपनी आशंकाएं प्रगट करते रहे हैं। अब इस योजना की गैर-कानूनी प्रकृति और इससे संकुचित होती लोगों की निजता की सुरक्षा को लेकर न्यायालय को अधिक ढील नहीं देनी चाहिए और तुरंत ही आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित ऊषा रामनाथन् के लेख पर आधारित।